Semester2nd

Topic -Key Issues in north south Relationship

 By

Anjani kumar ghosh

Paper vth.

भौगोलिक आधार पर समस्त संसार दो गोलार्द्धों – उत्तरी गोलार्द्ध तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में विभाजित है। उत्तरी गोलार्द्ध में अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य यूरोप के विकसित व धनी देश आते हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में लैटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया के अविकसित, पिछड़े हुए, गरीब तथा विकासशील देश शामिल हैं। राजनीतिक शब्दकोष में विकसित देशों के लिए उत्तर या विकासशील देशों के लिए दक्षिण शब्द का प्रयोग किया जाता है। उत्तर से तात्पर्य पूंजीवादी विचारधारा रखने वाले विकसित औद्योगिक देशों से है जहां पर तकनीकी विकास व उत्पादन अपनी चरम सीमा पर है। वहा पर प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है। ये देश समस्त विश्व के 70 प्रतिशत पूंजी साधनों पर अपना कब्जा किए हुए हैं। इसके विपरीत दक्षिण से तात्पर्य उन विकासशील देशों से है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद स्वतन्त्र हुए हैं। उनमें प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। इन देशों में तरह तरह की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समस्याएं हैं। पूंजी की कमी, प्रति व्यक्ति कम आय, जनसंख्या विस्फोट, निर्धनता, बेरोजगारी, भुखमरी आदि दक्षिण के विकासशील देशों की प्रमुख समस्याएं हैं। विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएं उद्योग प्रधान हैं, जबकि विकासशील देशों की कृषि प्रधान है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन आदि विकसित देश उत्तर की श्रेणी में हैं, जबकि भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान तथा अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के देश दक्षिण की श्रेणी में आते हैं। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उत्तर के विकसित तथा दक्षिण के विकासशील देशों के बीच नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था या अन्य बातों के बार में किए गए वार्तालाप को उत्तर-दक्षिण संवाद का नाम दिया जाता है। इस प्रकार उत्तर-दक्षिण संवाद नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की दिशा में उत्तर तथा दक्षिण के देशों के बीच जारी रहने वाले व्यक्तिगत सम्पर्कों का कार्यक्रम है। इसके लिए दोनों में परस्पर होने वाले प्रत्यक्ष वाद-विवाद को शामिल किया जाता है क्योंकि संवाद से तात्पर्य आपसी विचार-विमर्श ही होता है।

उत्तर-दक्षिण संवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

काफी लम्बे समय उत्तर के विकसित देशों का दक्षिण के विकासशील देशों पर साम्राज्यवादी नियंत्रण रहने के कारण विकासशील देशों में आर्थिक पिछड़ापन बढ़ गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के अधिकतर ग़ुलाम देश उत्तर की साम्राज्यवादी ताक़तों के पंजों से मुक्त होने लग गए। लेकिन अपने साधनों का विकसित देशों द्वारा लंबे समय तक दुरुपयोग करते रहने के कारण इस समय तक वे आर्थिक पिछड़ेपन के शिकार हो चुके थे। उन्होंने पाया कि विश्व अर्थव्यवस्था का झुकाव उनके हितों के खिलाफ है। विश्व के 30 प्रतिशत जनसंख्या वाले विकसित देश उनकी 70 प्रतिशत जनसंख्या पर अपना नव-उपनिवेशीय नियंत्रण कायम किए हुए हैं तो उनके लिए यह चिन्ता का विषय बन गया। उन्होंने महसूस किया कि उनकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 700 डॉलर है, जबकि विकसित देशों में यह 10000 डॉलर है। उन्हें विकसित देशों से मिलने वाली आर्थिक सहायता उनको नए प्रकार के शोषण का शिकार बना रही है। उनका विश्व व्यापार में हिस्सा बहुत ही कम है। उनका निर्यात लगातार गिर रहा हैं विदेशी व्यापार की शर्तें उनके हितों के विपरीत हैं। उन पर ऋणों का बोध लगातार बढ़ रहा है। 1984 की विश्व बैंक रिपोर्ट स्वयं इस बात को इंगित करती है कि विकासशील देश (दक्षिण) लगातार ऋण के भार से दबते जा रहे हैं 1950 में विश्व व्यापार में विकासशील देशों की भागीदारी 20 प्रतिशत थी जो 1975 तक 11 प्रतिशत रह गई। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अन्य वित्तीय संस्थान प्रतिवर्ष विकासशील देशों को जितनी मदद देते हैं; उससे अधिक वे ब्याज के रूप में वसूल करते हैं। विश्व विकास आन्दोलन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1992 में विश्व बैंक (World Bank) ने भारत, बंगलादेश व पाकिस्तान को 3 अरब डॉलर का ऋण दिया । ब्याज के भुगतान के बाद इन्हें 88 करोड़ 50 लाख डॉलर ही प्राप्त हुए। इससे विश्व मौद्रिक संस्थाओं की कारगुजारी स्पष्ट हो जाती है कि ये संस्थाएं विकासशील देशों के हितों के अनुकूल नहीें है। 1964 से 1967 तक व्यापार एवं प्रशुल्क पर हुए सामान्य समझौते (GATT) के तहत विकसित तथा विकासशील देशों में निर्यात व्यापार संबंधी कुछ विचार विमर्श हुआ लेकिन उसका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला, 1970 के दशक के प्रारम्भ में ही विकासशील देश आर्थिक सम्बन्धों के लोकतन्त्रीकरण पर जोर देने लगे। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1974 में अपने विशेष अधिवेशन में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) हेतु घोषणा एवं कार्यक्रम का मसौदा पारित किया। तब से अंकटाड, गुटनिरपेक्ष सम्मेलन आदि के माध्यम से विश्व अर्थव्यवस्था के ढांचे में परिवर्तन की मांग बलवती होने लगी। उत्तर के विकसित देशों ने इस बात को महसूस किया कि विकासशील देशों की उचित मांगों की अनदेखी करना गलत है। इसलिए उन्होंने आपसी विचार विमर्श की प्रक्रिया आरम्भ की जिसे उत्तर दक्षिण संवाद कहा जाता है। उत्तर-दक्षिण संवाद को विकसित करने वाली धटनाओं ने विकासशील देशों को नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग में वृद्धि करने के प्रयासों को और तेज कर दिया। संयुक्त राष्ट्र महासभा, अंकटाड, ब्रांट आयोग हटाना है, आदि के प्रयासों ने नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए उत्तर-दक्षिण संवाद पर बल दिया। उत्तर दक्षिण संवाद के प्रयास

1975 की पेरिस वार्ता –

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की घोषणा के बाद यह प्रथम प्रयास था जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग में वृद्धि करना था, दिसम्बर, 1975 में विकसित तथा विकासशील देश अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग में वृद्धि करना था, दिसम्बर, 1975 में विकसित तथा विकासशील देश अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के मुद्दे पर एकत्रित हुए और इसमें 8 विकसित तथा 19 विकासशील देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के आयोजन का श्रेय अमरीकी विदेश सचिव डॉ. हेनरी किसिंजार को जाता है इस सम्मेलन को ‘अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। यह सम्मेलन 18 महीने तक चला और 1977 में समाप्त हुआ। इसमें भाग लेने वाले देशों ने एक अंतर्राष्ट्रीय सचिवालय तथा ऊर्जा, कच्चे माल, विकास, वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में चार आयोग स्थापित करने पर सहमति जताई। विकसित राष्ट्रों ने यह भी स्वीकार किया कि ऊर्जा की समस्या तथा आर्थिक विकास की समस्या के बीच गहरा रिश्ता है। इसमें उत्तर के विकसित देशों ने दक्षिण के निर्धन देशों के लिए कुछ सहायता कार्यक्रमों की घोषणा की जिनमें गरीब देशों का बढ़ता तेल घाटा तथा जिस मूल्यों को स्थिर करने के लिए गरीब देशों की सहायता के लिए एक विशेष कोष की स्थापना की बात स्वीकारी गई। लेकिन इस सहायता के बदले विकसित देशों ने 1973 की तेल संकट की मार को फिर से न झेलने के लिए विकासशील देशों में स्थिर तेल मूल्यों व सप्लाई की गारंटी की मांग रखी। इस असंगत मांग ने इस वार्ता को विफल बना दिया और छप्म्व् की मांग को गहरा आघात पहुंचा। ब्राटआयोग –

दिसम्बर 1975 की पेरिस के असफल रहने पर विश्व बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष रॉबर्ट मैकनामारा के सुझाव पर अंतर्राष्ट्रीय विकास मुद्दों से निपटने के लिए 1977 में एक गैर सरकारी स्वतन्त्र आयोग स्थापित किया गया जिसे ब्रांट आयोग के नाम से जाना जाता है। इस आयोग के अध्यक्ष पश्चिमी जर्मनी के भूतपूर्व चांसलर विलीब्रान्ट थे। इसमें समस्त विश्व के देशों से सदस्य थे। भारत के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. एल.के. झा भी इस आयोग में थे। इसकी प्रथम बैठक दिसम्बर 1977 में बोन में हुई। इस आयोग ने सामाजिक विकास समस्याओं के बारे में अपनी दो रिपोर्ट – ‘नॉर्थ-साउथ : ए प्रोग्राम फॉर सर्वाइवल’ तथा -कॉमन क्राइसिस’ के नाम से भी प्रसिद्ध है। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि विश्व शान्ति व सहयोग के लिए उत्तर-दक्षिण में पारस्परिक निर्भरता आवश्यक है। इस आयोग ने विश्व नेताओं की एक औपचारिक बैठक बुलाने का सुझाव दिया ताकि विकसित व विकासशील देशों के बीच अन्तर के प्रमुख विषयों – व्यापार, सहायता, सुरक्षा, तकनीकी, आदान-प्रदान विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उदारीकरण आदि पर वार्तालाप हो सके और नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकें।

इस आयोग ने उत्तर-दक्षिण संवाद के विकास के लिए – वस्तु व्यापार, विकासशील देशों के लिए ऋण, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा सुधार, तकनीकी हस्तांतरण, बहुराष्ट्रीय निगमों का सुधार, समुद्री कानून, बहुउद्देश्यीय व्यापार, आदि मुद्दों पर अपने सुझाव दिए। उत्तर दक्षिण संवाद की दिशा में ब्रांट आयोग एक महत्वपूर्ण प्रयास था। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा का विशेष सत्र –

महासभा ने 25 अगस्त, 1980 को विकसित व विकासशील देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों के बारे में विचार करने के लिए एक विशेष सत्र बुलाया। इसमें विकासशील देशों ने अधिक आर्थिक सहायता, अधिक स्वतन्त्र व्यापार (संरक्षणवाद से रहित) कच्चे माल की स्थिर कीमतें आदि की मांग विकसित देशों के सामने रखी। लेकिन विकसित देशों ने इसे अस्वीकृत कर दिया। केवल इस बैठक में 9 महीने बाद होने वाली व्यापक समझौता वार्ता के लिए आधार प्रस्तुत कर दिया, अत: उत्तर-दक्षिण संवाद का यह प्रयास विकसित देशों की नकारात्मक भूमिका के कारण असफल रहा। कानकुन सम्मेलन  –

यह सम्मेलन मैक्सिको के कानकुन शहर में अक्तूबर, 1981 में हुआ। इसमें 14 विकासशील तथा 8 विकसित देशों (22 देश) ने भाग लिया। इसका उद्देश्य उत्तर-दक्षिण संवाद की प्रगति को जाचना था। इसमें 23 देशों को निमंत्रण भेजे गए थे, लेकिन सोवियत संघ ने इसमें हिस्सा नहीं लिया, अमेरिका के कारण क्यूबा को इसमें नहीं बुलाया गया। प्रथम शिखर वार्ता को सम्बोधित करते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति रीगन ने कहा कि अमेरिका व्यापक समझौता वार्ता में शामिल हो सकता है यदि – उनमें नई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के निर्माण की बात न हो, वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली सभी को मान्य हो, उनका उद्देश्य अधिक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास की प्राप्ति हो व समझौता वार्ताएं सहयोगपूर्ण वातावरण में हों। फ्रांस तथा कनाडा ने रीगन की इन शर्तों का खुलकर समर्थन किया। ब्रिटेन, अमरीका तथा जर्मनी ने यह विचार भी रखा कि विश्व अर्थव्यवस्था की पुन: संरचना सम्बन्धी विचार इनसे संबंधित अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों में ही हों। विकासशील देशों ने इस बात पर जोर दिया कि विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के ढांचे में व्यापक परिवर्तन करके उन्हें अधिक प्रासंगिक बनाया जाए। लेकिन विकसित देशों ने इसका विरोध किया और कहा कि इसके बारे में संयुक्त राष्ट संघ (UNO) के ही निर्णय को माना जाए। अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों ने इसका विरोध इसलिए किया कि वर्तमान व्यवस्था में विश्व बैंक का अध्यक्ष हमेशा अमेरिकी नागरिक तथा मुद्रा कोष का डायरेक्टर पश्चिमी यूरोप का ही नागरिक होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ में ये देश अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग करके वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखने में सफल हो सकते हैं। इसलिए इन्होंने UNO में ही निर्णय की बात उठाई। इस सम्मेलन में खाद्यान्न समस्या, भुखमरी, कृषि विकास, व्यापार समस्या, ऊर्जा संकट आदि में भी विस्तारपूर्वक विचार किया विकासशील देशों की तरफ से निर्यात सम्बन्धी समस्याओं को लेकर तैयार किया गया पांच सूत्री कार्यक्रम सम्मेलन की कार्यवाही में शामिल तो कर लिया गया लेकिन विकसित देशों ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। ये पांच सूत्र हैं – 1. जिन्सों के आयात-निर्यात संबंधी समझौते नए सिरे से हों, 2. जिन्सों के भाव स्थिर रखने के लिए अंकटाड के तत्वावधान में बताए जाने वाले सांझा कोष की प्रगति को बढ़ाया जाए, 3. विकासशील देशों के निर्यात पर प्रतिबंधों को समाप्त किया जाए, 4. रेशे सम्बन्धी समझौते का नवीनीकरण हो, 5. विकासशील देशों के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने की प्रवृति को रोका जाए। इस सम्मेलन के अन्त में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना व उत्तर-दक्षिण संवाद को आगे बढ़ाने पर कोई सहमति नहीं हुई। विकसित देशों के नकारात्मक व्यवहार के कारण यह सम्मेलन असफल रहा। न्यूयार्क सम्मेलन –

इस सम्मेलन का आयोजन अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर में हुआ। अंकटाड के तत्वावधान में 1983 में आयोजित इस सम्मेलन में विश्व के अनेक नेता एकत्रित हुए। भूतपूर्व दिवंगत भारतीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस सम्मेलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसमें उत्तर-दक्षिण संवाद को विकसित करने पर बल दिया गया। ळ.7 तथा अमेरिका की हठधर्मिता के कारण इस सम्मेलन में कोई ठोस निर्णय नहीं हो सका और अन्त में यह भी विफल हो गया। गैट समझौता तथा विश्व व्यापार संगठन –

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था तटकर और व्यापार से सम्बन्धित सामान्य समझौते द्वारा संचालित होती चली आ रही है। इस सामान्य समझौते को GATT कहा जाता है। इसका अर्थ है – व्यापार और प्रशुल्क पर सामान्य समझौता। इस समझौते की स्थापना का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करके लाभकारी लक्ष्यों को प्राप्त करना था। 1986 तक इसके 8 सम्मेलन हुए। आठवां सम्मेलन 20 सितम्बर, 1986 को उरुग्वे (अमेरिका) में हुआ जिसमें 100 देशों ने भाग लिया। उरुग्वे सम्मेलन में आगामी 4 वर्ष तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पर GATT की प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर विचार हुआ। लेकिन 7 वर्ष बाद भी GATT अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पर आम सहमति पर आधारित रिपोर्ट नहीं दे सका। उरुग्वे सम्मेलन में विभिन्न वार्ताओं का दौर चला। इसका आठवां दौर उरुग्वे के शहर पुन्ता डेल इस्ते में शुरू हुआ। इसमें परम्परागत वस्तु व्यापार निगम के बनते रहे। कृषि को इससे बाहर रखा गया। उरुग्वे दौर की वर्तमान वार्ता में कृषि को भी शामिल कर लिया गया। इसमें चार नए क्षेत्रों – – 1. व्यापार से संबंधित निवेश उपाय, 2. बौद्धिक सम्पदा अधिकार के पहलुओं से सम्बन्धित व्यापार, 3. सेवाओं में व्यापार तथा 4. कृषि को शामिल किया गया। गैट वार्ता की सूची में ये क्षेत्र विकसित देशों की स्वीकृति से ही शामिल किए गए। विकसित देशों का तर्क था कि व्यापार से संबंधित निवेश उपायों को वार्ता सूची में शामिल करना चाहिए क्योंकि विकासशील देश विदेशी निवेश को नियंत्रित करने वाली नीतियां बनाकर विदेशी कम्पनियों के स्वतन्त्र व्यापार में बाधा पहुंचाते हैं। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों, विशेषकर पेटेण्ट, कॉपीराइट तथा टे्रडमार्क के अपर्याप्त संरक्षण के कारण चोरी का व्यापार बढ़ता है और वैद्य व्यापार को हानी पहुंचती है। विकासशील देशों ने विकसित देशों के इन तर्कों का जोरदार खण्डन किया। 1990 तक उरुग्वे वार्ता किसी सर्वमान्य हल तक पहुंचने में असफल रही। 1991 में 108 सदस्यीय GATT के महानिदेशक आर्थर डुंकेल ने गैट के भावी स्वरूप पर 500 पृष्ठों की अपनी प्रस्ताव सूची पेश की। इन प्रस्तावों पर विचार करने के लिए 17 अप्रैल, 1992 तक का समय दिया गया। विकासशील देशों ने डुंकेल प्रस्तावों का विरोध किया। क्योंकि इसमें कृषि सब्सिडी, बौद्धिक सम्पदा अधिकार (पेटेंट, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क), विदेशी निवेश उपायों तथा सेवाओं को भी शामिल करके विकासशील देशों की मांगों और आवश्यकताओं की अनदेखी की गई और विकसित देशों के ही हितों का ध्यान रखा गया। इसमें सबसे अधिक विरोध पेटेन्ट अधिकारों के बारे में था। कृषि क्षेत्र में इसके लागू होने पर विकासशील देशों को कृषि तकनीक विकसित देशों से खरीदने पर भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। इस तरह डुंकेल प्रस्तावों के माध्यम से GATT द्वारा विकासशील देशों पर गलत नीतियां थोपने का विकासशील देशों ने विरोध किया और अपने व्यापारिक हितों की ओर विकसित देशों का ध्यान आकर्षित किया। लेकिन उनके विरोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और GATT में विकसित औद्योगिक देशों का ही प्रभुत्व बना रहा। GATT का पुराना रूप उस समय अप्रासंगिक हो गया जब 15 दिसम्बर, 1993 को 117 सदस्य देशों ने सर्वसम्मति से नए GATT को स्वीकृति प्रदान कर दी। यह समझौता 1995 में लागू हुआ और इसी के तहत विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई। आज विश्व व्यापार संगठन (नया गैट समझौता) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित 28 समझौते को लागू करता है जो उरुग्वे दौर की वार्ता में शामिल थे। यह संगठन पुराने गैट से अधिक व्यापक है। यह बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को संस्थागत व वैधानिक आधार प्रदान करता है। यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर अपनी सजग दृष्टि रखता है। इसका प्रत्येक सम्मेलन 2 वर्ष के अन्तराल पर होता है। इसका प्रथम सम्मेलन सिंगापुर में हुआ और चौथा सम्मेलन नवम्बर 2001 में दोहा (कतर) में हुआ। तृतीय सम्मेलन सिएटल में 1999 में हुआ, जिसमें विकासशील देशों ने अमेरिका के श्रम मानकों का विरोध किया। अमेरिका श्रम मानकों पर इसलिए जोर दे रहा था ताकि विकासशील देशों ने बने सस्ते माल से प्रतिस्पर्धा में विकसित देशों को बचाया जा सके। 75 विकासशील देशों ने प्रथम बार विश्व व्यापार संगठन को ज्ञापन दिए। विकासशील देशों ने विकसित समृद्ध देशों के आगे न झुकने का संकल्प किया। लेकिन चौथे शिखर सम्मेलन के एजेंडे को स्वीकार करके विकासशील देशों के ही हितों को हानि पहुंचाई जा रही है। दोहा शिखर सम्मेलन 2005 तक अपने विकास लक्ष्य को प्राप्त करेगा। इस सम्मेलन में भारत व अन्य विकासशील देशों ने जन स्वास्थ्य संबंधी दवाईयों के उत्पादन एवं अधिग्रहण के मामले में बड़ी सफलता प्राप्त की। इससे एड्स, टी.बी., मलेरिया, आदि रोगों से लोगों को बचाने के लिए औषधियों के उत्पादन के मामले में WTO के पेटेन्ट संबंधी नियम रुकावट पैदा नहीं कर सकते। ये दवाईयां WTO के पेटेन्ट अधिकारों से बाहर है। इस प्रकार पुराने गैट तथा नए गैट (WTO) के अंतर्गत विकसित तथा विकासशील देशों के विचार-विमर्श की प्रक्रिया उत्तर दक्षिण संवाद को आगे बढ़ाकर नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की दिशा में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों को प्रवाहित करने का एक प्रयास है। पृथ्वी सम्मेलन  –

प्रथम पृथ्वी सम्मेलन जून 1992 में तथा दूसरा जून, 1997 में हुआ। इनका उद्देश्य पर्यावरण सुरक्षा के मुद्दों पर विचार करना था। प्रथम पृथ्वी सम्मेलन रियो दि जेनेरो (ब्राजील) में 3 से 14 जून, 1992 तक आयोजित हुआ। इसमें विकसित व विकासशील देशों ने पर्यावरण प्रदूषण के लिए एक दूसरे पर आरोप लगाए। विकसित देशों ने कहा कि विकासशील देशों की जनसंख्या विस्फोट की स्थिति के कारण व गरीबी के कारण यह हुआ है। ये देश घने जंगलों का सफाया कर रहे हैं और पर्यावरण संतुलन को खराब कर रहे हैं। इसके विपरीत विकासशील देशों ने कहा कि ऐसा विकसित देशों द्वारा विलासिता की वस्तुओं पर किया गया फिजूलखर्च है जिससे वातावरण में ग्रीन हाऊस प्रभाव में वृद्धि हुई है। इस सम्मेलन में उत्तर-दक्षिण (विकसित व विकासशील) देशों में निम्नलिखित मुद्दों पर मतभेद उभरे:- जनसंख्या- उत्तर के विकसित देशों ने पर्यावरण के विनाश के लिए विकासशील देशों की अधिक जनसंख्या होने को उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने कहा कि अपना पेट भरने के लिए विकासशील देशों की गरीब जनता लगातार वनों को काट रही है। जबकि विकसित देश अपने को इसके लिए उत्तरदायी नहीं मानते। विकासशील देशों का कहना है कि अपनी विलासमयी प्रकृति के कारण विकसित देश पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। ये देश विश्व के 75 प्रतिशत साधनों का स्वयं प्रयोग करते हैं और 25 प्रतिशत ही शेष विश्व के लिए छोड़ते हैं।

तकनीकी हस्तांतरण- गरीब देशों क मानना है कि तकनीकी विकास अपने साथ कुछ दोष भी लेकर पैदा होता है। अत्यधिक तकनीकी विकास पर्यावरण के लिए खतरा भी पैदा करता है। यदि तकनीक का उचित प्रयोग व हस्तांतरण किया जाए तो इससे इसके दोषों से निजात दिलाई जा सकती है। गरीब देश तकनीकी का प्रयोग प्रदूषण कम करने तथा ऊर्जा क्षमता में सुधार करने के लिए प्रयोग करने के पक्ष में हैं। लेकिन विकसित देश इसे भारी कीमत लेकर बेचने के पक्ष में हैं। वे इसका हस्तांतरण नहीं करना चाहते। इसलिए दोनों में मतभेद पैदा होते हैं।

ग्रीन हाऊस प्रभाव- गरीब देशों का कहना है कि कार्बन डार्डऑक्साइड गैस को बढ़ा रहे हैं। इस सम्मेलन में विकसित देश ग्रीन हाउस प्रभाव को बढ़ाने वाली हानिकारक गैसों में 20 प्रतिशत कटौती करने के पक्ष में थे लेकिन विकासशील देश चाहते थे कि यह कटौती 50 प्रतिशत तक हो। इससे दोनों में मतभेद उभरकर सामने आए। पर्यावरण विनाश- पर्यावरण को दूषित करने का जिम्मा दोनों का है। चाहे विकसित देश हो या विकासशील देश दोनों इसमें समान रूप से भागीदार हैं। लेकिन इस सम्मेलन में विकसित देशों ने विकासशील देशों को और विकासशील देशों ने विकसित देशों को पर्यावरण को प्रदूषित करने के लिए जिम्मेदार ठहराया, इसलिए विकसित देश चाहते हैं कि पर्यावरण को सुधारने का खर्च सांझे रूप में उठाए जाए लेकिन विकासशील राष्ट्र चाहते हैं कि इसका खर्च विकसित राष्ट्र ही उठाएं क्योंकि वे विश्व के 75 प्रतिशत संसाधनों का दोहन करते हैं।

वन- अमीर देशों का कहना है कि विकासशील देश अपनी आर्थिक मजबूरियों के कारण उष्णकटिबंधीय वनों को काट रहे हैं। लेकिन विकासशील देशों का कहना है कि वनों को काटना विकसित राष्ट्रों की ही आवश्यकताओं को पूरा करता है। यदि ऐसा किया जाए तो इससे राष्ट्रीय संप्रभुता के सिद्धान्त का भी उल्लंघन होगा।

धन- विकासशील देश चाहते है कि पर्यावरण सुधार के लिए किए जाने वाले उपायों का खर्च नई सस्ंथा का निर्माण करके ही उठाया जाए। लेकिन विकसित राष्ट्र चाहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र एजेंसियां या विश्व बैंक इस कार्य को करें। अनेक अन्तर्विरोधों के बावजूद भी इस सम्मेलन में आगामी शताब्दी के लिए विकास तथा पर्यावरण सुधार योजना के लिए धन जुटाने पर आम राय बन गई। विश्व में वनों के संरक्षण सम्बन्धी बातों पर भी इसमें सहमति हुई। अनेक देशों ने 0.7 प्रतिशत राष्ट्रीय उत्पाद का भाग विकास सहायता के रूप में देने का वचन दिया, इस सम्मेलन में विश्व जैव विविधता सन्धि भी हुई जो 29 दिसम्बर 1993 को लागू हो गई। लेकिन अमेरिका ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किए। इसके कारण पर्यावरण सुधार व वन संरक्षण के लिए किसी कोष की स्थापना नहीं हो सकी। लेकिन पर्यावरण की रक्षा के महत्व को अवश्य समझ लिया गया। जापान ने एक अरब डॉलर देकर इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। जर्मनी ने भी प्रति वर्ष 40 करोड़ प्रतिवर्ष देने का वचन दिया। फ्रांस ने भी 0.6 प्रतिशत अपनी राष्ट्रीय आय से देने का वायदा किया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि विकासशील देशों के साथ साथ कुछ विकसित देश भी पर्यावरण सुधार तथा वन संरक्षण में आगे जाए। इसमें पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए संयमपूर्ण जीवन शैली अपनाने का आग्रह किया गया। इस सम्मेलन में अमेरिका ने वनों को सार्वभौम सम्पदा मानने की बात कही तो भारत ने भी कच्चे तेल को सार्वभौम सम्पदा मानने की बात कही क्योंकि इसका उपयोग सम्पूर्ण मानव जाति के लिए होता है। । इस प्रकार इस सम्मेलन में उत्तर-दक्षिण का अन्तर स्पष्ट तौर पर उभरकर सामने आया। इसमें पर्यावरण तकनीकी हस्तांतरण व अमीर देशों द्वारा विकासशील देशों को दी जाने वाली सहायता पर असहमति ही दिखाई दी। इसके बाद 23 से 27 जून, 1997 को दूसरा पृथ्वी सम्मेलन अमेरिका के शहर न्यूयॉर्क में आयोजित हुआ। इसमें 170 देशों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इसमें संसार में लगातार कम हो रहे वनों, उनकी नष्ट हो रही प्रजातियों तथा कम होता मत्स्य संसाधनों पर चिंता प्रकट की गई। विकासशील देशों ने विकसित देशों को पर्यावरण तकनीक के विकास के लिए पर्याप्त धन देने में उदारता बरतने का आग्रह किया। इस सम्मेलन में अमेरिका ने विकासशील देशों को पर्यावरण अनुकूल ऊर्जा स्रोतो के विकास के लिए एक अरब डॉलर की सहायता देने की घोषणा की, लेकिन ग्रीन हाउस प्रभाव में वृद्धि करने वाली गैसों को नियंत्रित करने के किसी मात्रात्मक लक्ष्य पर सहमति नहीं हो सकी। इस प्रकार यह सम्मेलन भी बिना किसी ठोस परिणाम के ही समाप्त हो गया। इस प्रकार पेरिस वार्ता से प्रारम्भ होने वाला उत्तर-दक्षिण संवाद द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन (1997) तक पहुंच गया, लेकिन इसके ऐसे परिणाम नहीं निकले कि नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की स्थापना हो सके। इसमें पारस्परिक अंतरनिर्भरता के सिद्धान्त का रुख आत्मनिर्भरता की तरफ मुड़ता प्रतीत नहीं हुआ। न ही आज तक विकसित राष्ट्रों का नव-उपनिवेशवादी रवैया कम हुआ है। उनकी यह इच्छा अधिक प्रबल है कि विकासशील देशों पर अपनी साम्राज्यवादी पकड़ मजबूत बनाई जाए। डुंकेल प्रस्ताव नव-साम्राज्यवाद का ताजा उदाहरण है। आज WTO तथा IMF जैसी मौद्रिक संस्थाएं भी विकसित देशों के ही हितों को पूरा करने में लगी हुई हैं। स्वयं विकासशील देश भी आपसी मतभेदों के शिकार हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विकासशील देश आवाज तो उठाते हैं; लेकिन उनकी आवाज विकसित देशों की कारगुजारी के आगे दब जाती है। आज अनेक विकासशील देश विकसित देशों द्वारा प्राप्त आर्थिक व तकनीकी सहायता पर ही जी रहे हैं। आज समय की मांग है कि उत्तर-दक्षिण संवाद को प्रभावी बनाने के लिए जापान जैसे विकसित देशों का सहयोग प्राप्त किया जाए। दक्षिण-दक्षिण सहयोग को आधार बनाकर विकसित राष्ट्रों पर अपनी निर्भरता को कम किया जाए और आत्म-निर्भरता को उपयोगी बनाया जाए। इससे उत्तर-दक्षिण संवाद पर आशानुकूल प्रभाव पड़ेगा और नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा।